द्वारा

डॉ आशीष सिसोदिया

लोक साहित्य एवं परिनिष्ठित साहित्य -

परिनिष्ठित साहित्य - इतिहास साक्षी है कि लिखित साहित्य से बहुत पहले और युगों तक समूचा वाङ्मय ’श्रुत‘ परंपरा में रहा। इस वाङ्मय में धार्मिक, शास्त्रीय और चुने हुए साहित्य को सुरक्षित रखने की आवश्यकता थी। अतः कुछ पढ़े-लिखे लोगों ने उसे संकलित किया, जिन्होंने इसे लिख कर अपने पास रख लिया उन पर इनका अधिकार हो गया। यह लिखित साहित्य नियामक और विधायक बंधनों से युक्त हो गया। यह कुछ हाथों में सीमित होकर रह गया और शिष्ट साहित्य कहलाया।

इस प्रकार समूचे वाङ्मय विस्तार का एक अंश जो कुछ लोगों की धरोहर बना, जो नियमों के भीतर रहकर, मर्यादाओं की रक्षा और पालन कर अपने रूपों की कठोर परिभाषा कर, आलोचना, समालोचना सहता रहा, शिष्ट साहित्य कहलाया। यह सामान्यतः लिखित होता है। इसलिए यह लगभग अपरिवर्तनीय होता है। इसके विपरीत समूचे वाङ्मय का विशाल भाग जो सब लोगों की संपत्ति था, यह बंधनों से मुक्त रहकर, जनमानस के समीप रहकर, स्वच्छंद जीवन धारा के समान ही समानान्तर बहता रहा वह लोकसाहित्य कहलाया।

इस तरह परिनिष्ठित साहित्य सीमित परिवेश में बंधा शिष्ट समाज का दर्पण है इसका मूल उत्स लोकसाहित्य ही है। उसी से वह प्रेरणाएँ ग्रहण करता है एवं साहित्यिक चलनी से छनकर परिनिष्ठित साहित्य का स्वरूप प्राप्त करता है। दूसरे शब्दों में कहें तो लोकसाहित्य और शिष्ट साहित्य में जनक एवं जनित (पिता-पुत्र) का संबंध है।

परिनिष्ठित साहित्य का सृजन -

आदिम जगत में सामूहिक जीवन जीने की परंपरा रही है। आदिम काल में सभी की संस्कृति एक थी। न तो उनके जीवन में विविधता थी न ही पग-पग पर जीवन में उतार-चढ़ाव था। न कोई विशिष्ट था, न ही कोई सामान्य। न कोई राजतंत्रीय संस्थाएँ थीं न वर्ग विभाजन था। समूचा आदिम जगत कुलों/कबीलों में संगठित था। सामान्य भाषा शैली, सामान्य धार्मिक आचार-विचार और उत्पादन के सामान्य साधन थे किंतु उत्पादन के साधनों के विकास के साथ ही उत्पादित वस्तुओं की वृद्धि हुई। इस वृद्धि से वस्तुओं का संग्रहण बढ़ा। संग्रहण बढ़ने से स्वामित्व की भावना विकसित हुई। इस कारण समाज में वर्ग विकसित हुआ। इसके साथ ही ज्ञान-विज्ञान के स्रोतों में भी वृद्धि हुई। इन स्रोतों पर एकाधिकार की भावना बलवती हुई। ज्ञान-विज्ञान से प्राप्त अनुभवों को कुछ लोगांे ने लिपिबद्ध कर उन ग्रंथों पर अधिकार कर लिया। बाद में यह ग्रंथित ज्ञान पर समाज के धन संपन्न एवं सत्ता संपन्न लोगांे का कब्जा हो गया। ग्रंथित ज्ञान प्राप्त लोगों ने सत्ता पर अधिकार कर लिया। ये सभ्य या उच्च कहलाए। ग्रंथित ज्ञान से वंचित लोग कार्मिक और विपन्न वर्ग लोक कहलाया। इस तरह आदिम साम्यवादी अवस्था के उपरान्त व्यक्तिगत संपत्ति और व्यक्तिगत स्वामित्व की अवधारणा के कारण लोक और आभिजात्य की समानान्तर सृष्टि हुई। श्रम विभाजन हुआ और कार्यक्षेत्र एवं अधिकार क्षेत्र अलग-अलग हो गए।

साधन संपन्न, सुविधा सम्पन्न वर्ग जो कि आभिजात्य था। उनकी संस्कृति के अहम तत्वों में वैयक्तिकता, शास्त्रीय जड़ता और विलासिता में सराबोर सौंदर्य बोध एवं जीवन से अलगाव था। यही उनके साहित्य में भी दिखाई दिया। जबकि लोक साहित्य में सहज स्वाभाविक गत्यात्मकता, सच्चाई और खरापन है।

लोक साहित्य और परिनिष्ठित साहित्य का संबंध व भेद -

जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि परिनिष्ठित साहित्य का मूल उत्स लोक साहित्य ही है, दोनों के मध्य पिता-पुत्र का संबंध है। लोक साहित्य जनक एवं शिष्ट साहित्य जनित है। इसलिए सभ्य और संस्कृत देश यह स्वीकार करने लगे हैं कि लोक साहित्य को निरादृत करना गलत है। सामान्य दृष्टि से देखने पर लोकसाहित्य और शिष्ट साहित्य में मूलतः कोई अंतर नहीं है। दोनों को अपनी प्रेरणा मानव जीवन से प्राप्त होती है। उसमें तात्विक भेद न होकर स्तर भेद है, जो निम्नानुसार है:-

लोक का, साधारण, अशिक्षित जनता का साहित्य लोक साहित्य माना जाता है, जिसमें लोक जीवन के विविध चित्र होते हैं। यह लिपिबद्ध कम, मौखिक होता है। अपनी मौखिक परंपरा लोक कंठ में जीवित रहता है। यह परिवर्तनीय होता है; जनता अपनी इच्छा, सुविधा और आवश्यकतानुसार इसमें प्रयुक्त सामग्री में संशोधन कर लेती है। इसकी भाषा लोकभाषा होती है, जो अधिक सरल, सुगम और व्याकरणिक बंधनों से स्वतंत्र होती है। इसमें स्थानगत विविधता होती है। सामान्य लोकसमूह इसे अपना मानते हैं। इस तरह लोक साहित्य लोकमानस की सामूहिक चेतना का फल है। उसकी अभिव्यक्ति सामूहिक होती है। लोकसाहित्य के केंद्र में ’समूह‘ है और लोकसाहित्य के रचयिताओं के नाम अज्ञात होते हैं। लोकसाहित्य चूँकि आदिम युग से चला आ रहा होता है, अतः पुरातन होता है।

सुशिक्षित संस्कृतजन का साहित्य परिनिष्ठित साहित्य माना जाता है। यह सामान्यतः लिखित होता है। यह अपरिवर्तनीय होता है। अक्सर यह कम या अधिक अंशों में शास्त्र का सहारा लेकर चलता है। आभिजात्य साहित्य में व्यक्तिगत रचनाकारों के द्वारा भाषा की सर्जनात्मक शक्ति का अधिकतम प्रयोग किया जाता है। इसकी भाषा परिनिष्ठित, व्याकरणबद्ध और स्थिर प्रायः होती है। नाम से जुड़ा साहित्य आभिजात्य या परिनिष्ठित साहित्य है। परिनिष्ठित साहित्य के केंद्र में व्यक्ति है। परिनिष्ठित साहित्य बाद में परिष्कृत होते-होते शास्त्रीय नियमों से बंधने के बाद रचा जाता है। अतः परवर्ती और आधुनिक है। डाॅ० श्रीराम शर्मा लिखते हैं, ’’शिष्ट साहित्य या परिनिष्ठित साहित्य की प्रकृति लोक साहित्य से नितान्त भिन्न होती है। लोकसाहित्य वन्य निर्झर है जिसका साज-शृंगार नहीं किया जाता। वह तो प्राकृतिक तौर पर अपना मार्ग स्वयं निर्धारित कर लेता है। जबकि शिष्ट साहित्य उस नहर के समान है, जिसके किनारे बलपूर्वक, योजनाबद्ध ढंग से बनाए जाते हैं और कायदे करीने से सजाए जाते हैं।‘‘

बावजूद इसके यह सत्य है कि काल के निरंतर प्रवाह में लोकसाहित्य के अनेक तत्व आभिजात्य साहित्य में समाविष्ट हो गए हैं। यूँ ही सभी परवर्ती साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य से वह लिखित हो अथवा मौखिक कुछ न कुछ तत्व अवश्य ग्रहण करते हैं। सत्य यही है कि आभिजात्य साहित्य का मूल उत्स लोकसाहित्य ही है। ये दोनों साहित्य एक-दूसरे से बँधे हुए हैं। लोक अशिष्ट नहीं है और जिसे शिष्ट कहते हैं वह लोक से सर्वथा असम्पृक्त नहीं है, फिर भी सुविधा के लिए लोक और आभिजात्य का भेद मान्य हुआ है, और इसी आधार पर लोकसाहित्य से पृथक परिनिष्ठित साहित्य की अवधारणा सामने आई।

निष्कर्षतः जिसे हम आभिजात्य या परिनिष्ठित साहित्य कहते हैं, वह लोक साहित्य की ही परिमार्जित निष्पत्ति है। लोक साहित्य से ही परिनिष्ठित साहित्य पैदा हुआ है और विकसित हुआ है। इसकी पृष्ठभूमि में समृद्ध लोकसाहित्य ही है। इसलिए ही शिष्ट साहित्य का इतना विकास और महत्व है।